REVIEW OF RESEARCH

स्त्री, दलित,आदिवासी, और किसान के सामाजिक सरोकार का परिचय

बृजलाल अहिरवार[१] और डॉ. सत्येन्द्र शर्मा[२]

[१]शोधार्थी हिन्दी विभाग अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रींवा .
[२]पूर्व अतिरिक्त संचालक उच्च शिक्षा, रीवां म.प्र.

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

सारांश –:
साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्य के सामाजिक सन्दर्भ का विश्लेषण महत्वपूर्ण होता है। साहित्य का समाजशास्त्र जीवन को समग्रता में व्याख्यायित करता है। हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्र को विकसित करने में साहित्य के समाजशास्त्र की यूरोपीय परम्परा की चिन्तन दृष्टियों का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्र की भारतीय परम्परा के विकास में लेखक, रचना और पाठक ने अपना अद्वितिय योगदान दिया है। समकालीन साहित्य के समाजशास्त्र द्वारा सामाजिक मूल्य चेतना एव ं विश्वदृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। वर्तमान सदी में हिन्दी के रचनाकार अपनी प्रगतिशील चिन्तन पद्धति द्वारा साहित्य के समाजशास्त्र की नयी सैद्धन्तिकी रचने की ओर अग्रसर है ं।

मुख्य शब्द : स्त्री, दलित ,आदिवासी, किसान,सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना:–
वर्तमान सदी में साहित्य और समाजशास्त्र के बीच रिश्ता काफी गहरा है। साहित्य के समाजशास्त्र ने समाजशास्त्रीय आलोचना और समाजशास्त्रीय पद्धति का उपयोग कर साहित्य के सामाजिक सरोकारो में पर्याप्त वृद्धि की है। साहित्य की सामाजिक उपादेयता व सामाजिक दृष्टिकोण सामाजिक परिवेश से जुड़ाव पर निर्भर करता है। साहित्यकार का समाज से जुड ाव जितना गहरा होता है साहित्य का सामाजिक सरोकार उतना ही महान होता है।साहित्य, कला, चिन्तन के क्षेत्र में समाज और रचनाकार का स्थान बह ुत महत्वपूर्ण है। वह समाज की संरचना उस संरचना का निर्माण करने वाली इकाईयों के योगदान का विश्लेषण करता है। प्रसिद्ध साहित्यकार गुलाब राय ने लिखा है ''समाजशास्त्रीय विश्लेषण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है, वह तथ्यों के अवलोकन परीक्षण एव ं विश्लेषण की प्रणाली है, तर्कश्रित है तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन में निष्ठा रखती है। वस्तुनिष्ठता से उसका आशय, 'एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक रख सके जिनका कि वह स्वयं अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावना के स्थान पर पक्षपात रहित तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्को के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में लक्षित करने से है। पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर वस्तुनिष्ठता को प्राप्त किया जा सकता है। तटस्थता एवं निष्पक्षता वस्तुनिष्ठता की पहली शर्त है। साहित्य का समाजशास्त्र वस्तुनिष्ठता एव ं आत्मनिष्ठता के बीच सामंजस्य बैठाने की कोशिश करता है। यह भी सच है कि साहित्य का समाजशास्त्र किसी पद्धति विचारधारा, संस्कृति एवं समाज से विमुख नहीं हो सकता। चिन्तन एवं विचार के स्रोत वही से निकलते हैं। व्यक्ति और समाज के रिश्तों का सही सन्दर्भ में तलाश साहित्य का समाजशास्त्र करता है। साहित्य का

समाजशास्त्र किसी वर्ग विशेष से लगाव या किसी की उपेक्षा नहीं कर सकता। साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, उसके सपने हैं, उसकी जीजिविषा है। उसका कल्याण है। ऐसे में समाज के उपेक्षित एवं हाशिए के लोगों के समक्ष किसी भी प्रकार के शोषण के विरोध में साहित्य का समाजशास्त्र खड़ा होता है। वह किसान, मजदूर, सर्वहारा, दलित, आदिवासी स्त्री, अल्पसंख्यक जैसे समाज के उपेक्षित की पीड़ा, उत्पीड़न, शोषण का विरोध करता है तथा उनकी शोषण से मुक्ति की कामना करता है। हिन्दी साहित्य में यही कार्य कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रैदास, मीरा, निराला, महादेवी, प्रेमचन्द, रेणू, नागार्जुन आदि रचनाकारों ने किया।

अध्ययन का उद्देश्यः-

साहित्यकार के चिन्तन में मानवतावादी चेतना अत्यन्त प्रबल रूप से रहती है। इसी चेतना के आधार पर इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में समकालीन समाज, सभ्यता संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि को मानवीय परिप्रेक्ष्य में देखना इस अध्ययन का उद्देश्य है। साहित्य समाज को रचता है तथा समाज साहित्य को। इस क्रिया प्रक्रिया का अध्ययन करना भी यहाँ उद्देश्य में समाहित है। मनुष्य अपने ज्ञान द्वारा समाज का विवेचन करता है तथा वह समाजिक परिवर्तनों तथा हलचलों को समाज के उपेक्षित वर्ग के कल्याण के रूप में देखता है। यही रचनाकार की प्रगतिशील चेतना का परिचायक भी है। इस अध्ययन के उद्देश्य में स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा समाज के हाशिए के लोगों की चिन्ता, पीड़ा, उत्पीड न को सामाजिक सन्दर्भो में विश्लेषण करना तथा एक बेहतर समाज की निर्मिति की ओर अग्रसर होना समाजशास्त्रीय दृष्टि से जरूरी भी है। यही अध्ययन का उद्देश्य भी है।

साहित्यावलोकनः-

इक्कीसवीं सदी में साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा के अध्ययन के लिए समाजशास्त्रीय चिन्तन की यूरोपीय एवं भारतीय दृष्टि पर विचार-विमर्श किया गया है। विचार-विमर्श के इस क्रम में एलनस्विगवुड़, ब्रेख्त, मार्क्स, तेन, ग्राम्शी आदि के साहित्य का अध्ययन किया गया है। हिन्दी साहित्य का समाजशास्त्र रचने वाले मुक्तिबोध, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि के साहित्य का अवलोकन गहनता से किया गया है। इस विषय के अनुसंधान के क्रम में स्त्रीवादी लेखिकाओं उषाप्रियवदा, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि के साहित्य के आधार पर भारतीय समाज का विश्लेषण किया गया है। दलित लेखकों पर विचार करते हुए उनकी आत्मकथाओं में व्यक्त दलित समाज की पीड़ा एवं उत्पीड़न का अध्ययन समाजशास्त्रीय सन्दर्भो में किया गया है।

विश्लेषणः-

साहित्य और समाज के रिश्ते की खोज करते हुए एलन स्विगवुड ने लिखा है ''समाजशास्त्र की भांति साहित्य भी मुख्यतः मानव समाज से सम्बन्धित है, वह समाज के साथ उसके अनुकूलन और उसके परिवर्तन की आकांक्षा से संबन्धित है।'' साहित्य सामाजिक परिवर्तन एवं प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है और उसी से ऊर्जा ग्रहण करता है। मार्क्स-एंगेल्स, दुर्खीम, कॉट, जार्ज लुकाच आदि समाजशास्त्रियों ने कलात्मक संरचनाओं को समाज, विचारधारा एवं साहित्य के आपसी अन्तःक्रियाओं के सत्य के रूप में स्वीकार किया है। एलन स्विगवुड के शब्दों में ''विषय वस्तु की दृष्टि से साहित्य और समाज शास्त्र समान स्तर रखते है।

स्त्री विमर्श : उद्भव और विकास

राजनीतिक भागीदारी के संस्थागत दायरों के बाहर परिवर्तनकामी राजनीति करने वाले आंदोलनों को सामाजिक आंदोलनों की संज्ञा दी जाती है। लम्बे समय तक सामूहिक राजनीतिक कार्रवाई करने वाली ये आंदोलनकारी संरचनाएँ नगर समाज और राजनीतिक तंत्र के बीच अनौपचारिक सूत्र का काम भी करती हैं। हालाँकि ज़्यादातर सामाजिक आंदोलन सरकारी नीति या आचरण के ख़िलाफ़ कार्यरत रहते हैं, लेकिन स्वतःस्पूर्त या असंगठित प्रतिरोध या कार्रवाई को सामाजिक आंदोलन नहीं माना जाता।

इसके लिए किसी स्पष्ट नेतृत्व और एक निर्णयकारी ढाँचे का होना ज़रूरी है। आंदोलन में भाग लेने वालों के लिए किसी साझा मकसद और विचारधारा का होना भी आवश्यक है। क्या ये खूबियाँ राजनीति के औपचारिक दायरों में काम करने वाले किसी राजनीतिक दल या दबाव समूह में नहीं होतीं? दरअसल, सामाजिक आंदोलन अपने बुनियादी चरित्र में अनौपचारिक नेटवर्कों की अन्योन्यक्रिया से बनते हैं। वे ऐसे मुद्दे चुनते हैं जिन्हें औपचारिक राजनीति अपनाने से इनकार कर देती है। साथ ही वे प्रतिरोध और गोलबंदी के ग़ैर-परम्परागत रूपों का इस्तेमाल करते हैं। सामाजिक आंदोलनों ने अल्पसंख्यकों, हाशियाग्रस्त समूहों और अधिकार-वंचित तबकों की राजनीति को बढ़ावा दिया है। इसी कारण से यह भी माना जाता है कि समकालीन लोकतंत्र अपने विस्तार और गहराई के लिए सामाजिक आंदोलनों का ऋणी है।

स्त्री शब्द का सामान्यतः अर्थ मनुष्य की मुख्यतः नारी और पुरूष ये दो जातियों में से एक से जोडा जाता है जिससे संतान की प्राप्ति होती है और उसी से परिवार का निर्माण हो ने के साथ ही साथ इस लोक के मानव समाज की सृष्टि भी मानी गई है, जिसके बिना संतान, परिवार एवं मानव समाज की कल्पना करना असंभव है, उसे ही स्त्री के नाम से जाना जाता है जो दया, करूणा, ममतामयी, शाक्तिमयी, वात्सल्य प्रेम , सौन्दर्य एवं कोमल तथा कठोर हृदय आदि गुणो में महासिन्धु है, वह उपने इन्ही गुणों के कारण ही स्त्री एवं नारी के अतिरिक्त जननी, माता मॉ बहिन पत्नी भार्या औरत अवला तथा अर्ध्दागिनी आदि नामेां से भी जानी जाती है। स्त्री के संबंध में और अधिक जानने के पूर्व हमारे सामने एक दूसरी बडी समस्या आ पडी है वह यह है कि विमर्श शब्द का अर्थ एवं उसका तात्पर्य क्या है इसके संबंध में डॉ हरेदव बाहरी जी ने इस शब्द का समानार्थी शब्दों के अर्थ में परामर्श सलाह राय (१) आदि शब्दों से जोडा है अर्थात् मत, मंतत्य, धारणा , सम्मति, मंत्रणा एवं मशविरा आदि शब्दों को भी उसी अर्थ में देखा जा सकता है जिस अर्थ में डॉ बाहरी जी ने देखा है। अतः अब हम कह सकते है कि स्त्री के संबंध में विद्वानों ने जो परामर्श, मत, धारणा , राय, सलाह एवं सम्मतियॉ आदि दी है, उसे ही स्त्री के विमर्श के नाम से जाना जा सकता है जिसके उद्‌भव और विकास को प्राचीन मध्य एवं आधुनिक काल में विद्वानों द्वारा रचित प्रसिद्ध धार्मिक तथा अधार्मिक ग्रन्थों से अच्छी तरह से समझा तथा परखा जा सकता है । इसके उद्‌भव और विकास को अध्ययन की दृष्टि से प्राचीन काल में महाऋषि एवं विद्वानों के ग्रन्थों में स्त्री मध्यकाल के ग्रन्थों में स्त्री तथा आधुनिक काल के ग्रन्थों में स्त्री ये तीन भागों में विभाजित करकें देखने का प्रयास किया गया है जिसे इस प्रकार से प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है यथाः

१. प्राचीन काल में महाऋर्षि एवं विद्वानों के ग्रन्थों में स्त्रीः-इस युग में वैदिक साहित्य तक सम्मिलित किया जा सकता है पूव्र वैदिक युग की अपेक्षा वैदिक युग में हर तरह से स्त्री की स्वतंत्रता पर रोक लगती हुई उत्तर बैदिक युग में स्त्री की स्वतंत्रता पर पूर्णतः बेन लग जाता है उसकी दासता की बेडिया आज भी ज्यों की त्यों है जबकि श्रीमति रेखा कस्तवार जी उत्तर वैदिक युग में स्त्री शिक्षा के संबध में लिखती है उत्तर वैदिक काल में भी स्त्री शिक्षा का महत्व था। पितृगृह में उन्हे भविष्य के गृहस्थ जीवन की शिक्षा का ज्ञान कराया जाता था। उनके शारीरिक बौध्दिक सांस्कृति विकास की ध्यान दिया जाता था संगीत व नृत्य व गान विद्या में प्रवीण होती थी उपनिषदों में शिक्षित स्त्रियों के उदाहरण है।

जिस संबंध में कस्तवार जी ने जो अपना कथन दिया है उसके संबंध में कुछ कहने से पूर्व डॉ. एन. सिंह ।

२. स्त्री चिन्तन की चुनौतिया / रेखा कस्तवार / दूसरा संस्करण -२०१६/ राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० नई दिल्ली / पृ. ५६ जी के विचार जान लेना हमारे बहुत ही आवश्यक हो जाते है उपलब्ध संस्करण के आधार पर मनुस्मृति में कुल २७५१ श्लोक है जो १२ अध्यायों में संगृत है इस प्राचीन कृति मनुस्मृति वे लिखते हैं कि जिस वर्ण के जा मनु ने कहा वह सम्पूर्ण वेद में कहा है क्योकि वेद सब विधाओं का भण्डार है अर्थात् सम्पूर्ण वेद को जानकर ही यह स्मृति बनाई है।

डॉ. एन. सिंह जी के उक्त कथन की पुष्टि योग्य मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय के श्लोक क्रमांक ६ व ७ को लिया जा सकता है इसका सातवॉ श्लोक देखे यथा -

यः कश्चित्कस्यचिध्दर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयों हि सः।।

अर्थात् जो बाते वेदों में लिखी हैं वही बाते मनु जी ने अपनी स्मृति में लिखी है अर्थात् विदुषी रेखा कस्तवार जी के हमने जो विचार पूर्व में दिए थे उसके सन्दर्भ में हमारी मानना यह है कि वैदिक या उत्तर वैदिक युग स्त्री शिक्षा का महत्व था अर्थात नहीं था मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय का ६७वे श्लोक देखें इस बात की पुष्टि योग्य देखा जा सकता है तथाः

वैवाहिके विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिक स्मृतः।
परिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोग्नि परिक्रिया।।

जहॉ तक उसके शारीरिक बौध्दिक सांस्कृतिक विकास की बात करें तो वैदिक या उत्तर वैदिक युग में स्त्री के जन्म के बाद सांसे ही रूक गई होगी अर्थात् उसके शारीरिक बौध्दिक एवं सास्कृति विकास की ध्याान नहीं दिया गया वरना ३० वर्ष के वृध्द आयु वाले पुरूष के साथ १२ वर्ष बालिका से तथा २४ वर्षीय युवा पुरूष का विवाह ८ वर्षीय दूध पीती बच्ची के साथ करने की क्या आवश्कता थी यथाः मनुस्मृति के नमोध्याय का ६४वें श्लोक देखें

त्रिंशद्वर्षोदूहेत्कन्यां हृद्या द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः।।

व्हीं मनु जी स्त्री को पूर्णतः पुरूष के अधीन स्वीकार करते वरना वह पतित मानी जाती है ऐसा मनु जी का विचार है यथा मनुस्मृति के पाचवें अध्याय का १४६वें श्लोंक का स्मरण करें–

“पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छे द्विरहमात्मनः”
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले।।

ठसके अतिरिक्त मनुस्मृति में स्त्री पुरूष से संबंधित अनेक बातें लिखी कर्म–धर्म एवं शास्त्रों की किन्तु स्त्री चिन्तन से संबंधित बाते स्त्री को पुरूष के अधीन गुलामी की बेडियों में पाते है वही बातें कहना चाहिए उससे भी अधिक शोचनीय स्थिति रामायण एवं महाभारत में पाते है । प्राचीन काल के महाकाव्यों के सन्दर्भ में सुधा चौधरी जी लिखती है महाकाव्यों में महिलाओ कीे स्थिति का जो चित्रण मिलता है वह अत्यंत शोचनीय है वस्तुतः महाकाव्य महिलाओं में महिलाओं की स्थिति का जो चित्रण मिलता है वह अत्यंत शोचनीय है वस्तुतः महाकाव्य महिलाओ की पीडा, दुख,असुरक्षा, पराधीनता और उत्पीडन के महाआख्यान है ये गाथाएं जिस व्यवस्था की वैचारिक जरूरत की उत्पाद है उसमें महिलाए घृणित, पतित व तिरस्कृत बेनामी जिंदगियॉ है।

सुधा चौधरी जी के उक्त विचार वास्तव में रामयण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों की स्त्री सन्दर्भ में सत्य एवें सटीक व्याख्याा करतें है। जैसाकि रामयाणएवं में सीता राम की ,उर्मिला–लक्ष्मण की , तारा–बाली की , मन्दोदरी रावण की एवं अहिल्या–इन्द्र की करदक्षणा भोगती रहती है इस रामायण काल में उनके लिए पुरूष वर्ग कोई मान सम्मान नहीं रखता वे शोषण की शिकार होती रहती थी । क्योकि राम ने सीता का रावण की कैद से मुक्त कराके वापस अपनी कुल मर्यादा की रक्षा के लिए लाए थें यथा राम कहते हैं।

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे।
पुरूषाद् यद्नुष्ठेयं मयैतदुपपादितम्।।
कः पुमान्स्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।

तेजस्वी पुनरादध्दात् सुहल्लोभन चेतसा।।

महाभारत तो हर स्थिति मे महाभारत है इसमें अपहरण बलत्कार स्त्री पुरूष एवं समाज विरोधी अनेक विचार है । स्त्री को जुआ के खेल में चाहे वह दाव पे लगा दे या उसका भरी सभा में नग्न कर दे पुरूषों को सब जायज है । भीष्म ने अम्ब, अम्बा अम्बालिका का , कृष्ण ने रूकमणी का, अर्जुन से कृष्ण की बहन सुभद्रा रावण ने सीता आदि का अपहरण किया । वहीं अर्जुन ने द्रोपदी को चौसर के खेलमे दाव पर लगा दिया और हार जाने के बाद दुशासन ने उसे भरी सभा नग्न किया जिन के प्रमाण देने की आवश्कता नहीं है इनको सभी जानते है।

उपर्युक्त विवेचन एवं अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक युग से लेकर उत्तर वैदिक युग अर्थात सारे युग के किसी ग्रथ में स्त्री स्वतंत्रता नही है वह पुरूष के अधीन गुलामी की बेडियॉ पहने ही पायी है।

२. मध्यमाल के ग्रन्थों में स्त्री :- मध्यकाल के हिन्दी विद्वानों ने पूर्वमध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल ये दो भागों में विभाजित किया है । जिन्हे क्रमशः भक्तिकाल एवं रीतिकाल के नाम से भी जाना जाता है इस युग का आरम्भ तुगलक वंश से होता हुआ अंग्रेजो के अधिग्रहण तक माना जा सकता है इस सारे युग का आरम्भ तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश , मुगलवंश एवं अंग्रेज आदि ऐसे ही इस देश में राज्य करने वाले मध्यकाल मे राजवंश थे जिनका शासन था पूर्व युग वैदिक या उत्तर वैदिक युक की ही भांति ही इस युग में भी स्त्रियों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही उसमें कोई सुधार नही उने लिए एक और समस्या लेकर आया वह है पर्दा प्रथा इसके अतिरिक्त स्त्री के लिए वैदिक या उत्तर वैदिक युग की सभी गुलामी की बेडियॉ थी ही। इस युग में स्त्रियों की क्या स्त्रियों की क्या स्थिति थी उसके सन्दर्भ में इब्नबतूता के विचार से और अधिक जाना जा सकता है वे लिखते है कि ''हिन्दू कन्याओं को सम्पन्न मुसलमान आधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण कारके अमीर लोग अपना मनोरंजन किया करते थे। मुहम्मद बिन तुगलक ने चीन सम्राट के पास भारतीय काफिरों में से एक-एक सौ स्त्री पुरूषों को सौगात के रूप में भेजा था। बहुविवाह या पुर्नविवाह की प्रथाएं भी प्रचलित थीं। सती होने के लिए सुल्तान कक्की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य थी। स्त्रियों को पुरूषों जैसा स्तर तथा सम्मान प्राप्त न था। पर्दा प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी। फिर भी, स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी और कला-साहित्य के निर्माण में स्त्रियों का योगदान रहा करता था।

इब्नबतूता के उक्त स्त्री संबंधी विचार पूर्वमध्यकाल यानि भक्तिकाल के सन्दर्भ में हैं जिसमें स्पष्ट होता है कि स्त्री की कमीत या मान-सम्मान क्या है? मेरे विचार में पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल में स्त्रियों की समाज के लोगों की स्थिति शूद्र आदि निम्नतर जातियों की भांति भेड-बकरियों तो ठीक थी उन पशुओं से भी बदतर थी वह दासों की दासियॉ थीं।तो उनको सम्मान कहा था जीवन में यही स्थिति स्त्री की बैदिक या उत्तर वैदिक युग में भी थी यही भक्तिकाल में एवं रीतिकाल में भी लगभग वैसी ही स्थितियॉ थीं। उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को संकेत करते हुए डॉ. नगेन्द्र जी लिखते हैं कि '' नारी को अपनी सम्पत्ति मानकर ही उसका भोग इनके जीवन का मूल मंत्र हो गया था।..... किसी की कन्या का अपहरण अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी। कदाचित इसीलिए अल्पायु में लडकियों का विवाह अधिक प्रचलित हो गया था। विलासनी माताओं की देख-रेख के अभाव में राजकुमारियों और शहजादियां अपने महलों और हरमों मे कार्य करने वाले समान्य कर्मचारियों अथवा भृत्य के साथ प्रेम-व्यापार करने लग जाती थीं। अनेक सम्पत्तियों के कारण पति से पूर्ण प्रेम प्राप्त न कर सकने के कारण विवाहिताओं में भी अनेक ऐसी थी जो ऐसा करती थीं।''

डॉ. नगेन्द्र जी एवं इब्नबतूता जी इन दोनों के स्त्री संबंधी उक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है मध्यकाल था।

पूर्व मध्यकाल या उत्तर मध्य काल अर्थात् इस सम्पूर्ण काल में स्त्रियों की स्थिति में वेश्या वृत्ति को अपनाने वाली स्त्रियों को समाज में सर्वोच्च मान-सम्मान एवं स्थान था, किन्तु समाज में वे निन्दनीय होती थी परन्तु राजा महाराजाओं के लिए नहीं। उसके एक इशारे पर राजा एव महाराजा उसकी सेवा से तत्पर खडे रहते थे। जिसके सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र जी का मत बहुत ही सटीक प्रतीत होता है यथावे

लिखते हैं '' बेगमों और रक्षिताओं की अगणित संख्या के होते हुए भी लोग वेश्याओ के यहाँ पेड रहते थे- उनके इशारों पर लोगों के भाग्य का निर्णय तक हो जाया करता था । (१)

अर्थात् सामाजिक सामान्य स्त्री की अपेक्षा सम्पूर्ण मध्यकाल में वेश्यावृत्ति वाली स्त्रियों को अधिक प्रश्रय मिलता था। वैसे इस युग में प्रचुर मात्रा में साहित्य रच गया है। इस युग के पूर्व मध्यकाल अर्था भक्तिकाल में कबीरदास, जायसी, सूरदास एवं गोस्वामी तुलसीदास आदि ने विश्व स्तर का साहित्य रचा है जिसमें कबीरदास जी संत थे जिन्हें स्त्री के बारें में कामिनी एवं माया के अतिरिक्त कुछ सूझा ही नहीं वहीं सूरदास जी ने एक आदर्श राधा नाम का चित्रण तो कि परन्तु उसे समुचित स्थान नही दिला सके वह कृष्ण की प्रेमिका ही बनकर रह गई उसे पत्नी का अधिकार नहीं मिला अर्थात् वह समाज में निंदनीय ही रह गई। वहीं तुलसीदास जी ने भरत जैसा राम आदर्श भाई पात्र के रूप में दिया वैसी ही सीता जैसी आदर्श पत्नी का चित्रण किया और कंलकित कर उसकों अग्निकुंड में ढकेल दिया उसे समुचित स्थान नहीं मिला जो उसको मिलना चाहिए था। वही जायसी आदि प्रेममार्गी सूफी कवियों की समस्त रचनाओं में अंत राजा की मृत्यु होने पर स्त्री पात्रों को सती होते दिखाया जो स्त्री की स्वतंत्रता पर अंकुश का कारण बनता है। जायसी के सन्दर्भ मं आचार्य रामचन्द्र शुल्क जी लिखते है।, ''सामाजिक विचार जायसी के प्रायः वैसे ही थे जैसे उस समय जनसाधारण के थे। अरब, फारस आदि देशों में स्त्रियों का पद बहुत नीचा समझा जाता था। वे विलास की सामग्री मात्र समझी जाती थीं। प्राचीन भारत की बात तो नहीं कह सकते इधर बहुत दिनों से इस देश्ख में भी यही चला आ रहा हैं।''(२)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के उक्त विचार जो दिए हैं उसके सन्दर्भ मेरा मानना यह है कि जायसी जी ने भी वही परम्परा अपनाई जो सूरदास एवं गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनाई थी कोई अलग से दूसरा प्रयास नहीं किया। वहीं इस युग के उत्तर में अर्थात् रीतिकाल में भी चिन्तामणी, मतिराम, भूषण देव, बिहारी, घनानंद जैस समृद्ध साहित्यकार हुए किन्तु स्त्री चिंतन के सन्दर्भ में उसकी सौन्दर्यता एवं वियोग एवं संयोग चित्रण तकी ही सीमित रह जाता है यह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं इसकों हिन्दी के समस्त विद्वान जानते है वहीं मध्यकाल के सन्दर्भ में रेखा कस्तवार जी लिखती है बाल विवाह के कारण कन्या के समुचित विकास के लिए अवसर समाप्त हो गए थे, न उनके बौध्दिक मानसिक विकास और न ही शारीरिक विकास के अवसर थे, न ही चिन्ता।

रेखा कस्तवार जी के उक्त विचार के सन्दर्भ में मेरा यह कहना है कि यह कोई नयी स्थिति नही थी स्त्री के संबध में क्योकि सही स्थिति तो वैदिक एवं उत्तर वैदिक युग में भी देखा जा सकता है इस युग की सबसे वडी उपलब्धि यह है रामानंद जी के प्रसिद्ध १२ शिष्यों में पद्मावती स्त्री भक्त सम्मिलित है वहीं दक्षिण भरत के प्रसिद्ध १२ भक्तों में एक स्त्री भक्त भी सम्मिलित है जिसका तमिल नाम आंडाल आलवार एवं संस्कृत नाम उसका गोदा था तथा कृष्ण की दीवानी मीरा बाई का नाम प्रसिद्ध ही है आदि इसके साथ-साथ स्त्रियों ने कला के अन्तर्गत नृत्य एवं गयान आदि में भी परिचय दिया यही इस युग की देन है।

अतः निष्कर्ष रूप हम कह सकते है कि उत्तर वैदिक युग भॉति ही मध्यकाल में भी बाल-विवाह बहु पत्नी विवाह, अपहरण, परदा प्रथा, सतीप्रथा, क्रय करके स्त्री को खरीदना, भोग विलास का साधन थी आदि का शिकार होती थी स्त्रियॉ वही इस युग में वेश्या वृत्ती को प्रश्रय खूब मिलता था जिसका स्थान घर पत्नी से ऊचॉ था तभी तो किसी न किसी का भाग्य भी उस पर निर्भर हो जाता था। इस युग में स्त्री को पूर्व वैदिक या उत्तर वैदिक की भॉति पुरूष के समान स्तर प्राप्त नहीं था किन्तु फिर भी इस युग में मीराबाई गोदा पद्मावती वाबरी साहिता आदि स्त्री भक्त हुई थी।

३. आधुनिक काल के ग्रन्थों में स्त्री :- हिन्दी के अधिकतर विद्वान आधुनिक युग का आरम्भ प्रथम भरतीय स्वतंत्रता आंदोलन अर्थात् सन् १८५७ ई० से मानते है इस आदोलन को अंग्रेजो दबा जरूर दिया था लेकिन इससे भारतीय समाज में नई चेतना जागृत होने लगी । इसके साथ - साथ पुरूष समाज की मानसिकता में धीरे - धीरे परिवर्तन होने लगा और आधुनिक जहॉ एक ओर सिनेमा के क्षेत्र में स्त्री समाज में प्रगति हुई वहीं दूसरी ओर शासन सत्ता संभालने से लेकर साहित्य एवं खेल - कूद आदि में स्त्रियों ने प्रगति कर मील के पत्थर गाड दिए जहॉ पुरूष समाज भी उनकी बराबरी में कहीं

कही पीछें ही रह जाता है, किन्तु ग्रामीण एवं आदिवासी अंचलों में रहने वाली स्त्रियों का जीवन ज्यों का त्यों है वे आज भी विकास से कोसों दूर है देश में आजादी के पूर्व एवं बाद में हिन्दी के आधुनिक काल में भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनाथ चौधरी प्रेमधन राधाकृष्णदास , ठाकुर जगमोहन सिंह एवं राधाचरण गोस्वामी आदि, द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिली शरण गुप्त, रामप्रसाद शुक्ल सनेही, गिरिधर शर्मा नवरत्न नाथूराम शर्मा शंकर आदि छायावाद में जयशंकर प्रसाद पंडित।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत एवं महादेवा वर्मा राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्य धारा में माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त , बालकृष्ण शर्मा 'नवीन ' सुभद्रा कुमारी चौहान आदि, प्रगातिवाद मै केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन शिवमंगल सिंह 'सुमन' , गजानन माधव मुक्तिबोध , वासुदेव सिंह त्रिलोचन एवं रांगेय राघव, प्रयोगवाद एवं नयी कविता में अज्ञेय, रामविलास शर्मा, प्रीभाकर 'माचवे' गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, रामशेर बहादुर सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, वियदेवनारायण साही कुवरनारायण , सर्वेश्वर दयाल सक्सेना केदारनाथ सिंह एवं कीर्ति चौधरी आदि इस युग के प्रंमुख साहित्यकार है। इस युग के समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, बालगंगाधर लोकमान्य तिलक, डॉ० बी० आर० अम्बेडकर, श्रीमती ऐनीवेसेन्ट, सावित्री बाई फुले (१८३१-१८९७) ने पेठ (पूणे) में देश के पहले लडकियों के लिए स्कूल की स्थापना की इन्हे देश की पहली शिक्षिका भी माना जाता है एवं ज्योतिवा फुले एवं स्वामी विवेकानंद आदि प्रंमुख है । इसी प्रकर महिला साहित्यकारेां का आगमन मुख्य रूप से इसी युग में काव्यायनी, अनामिका नीलेश रघुवंशी, मैत्रेयी पुष्पा, अर्चना , गीता श्री, बंगमहिला,आदि प्रमुख स्त्री साहित्यकार है। राजाराम मोहन राय जी के प्रयास से सती प्रथा कों सन् १८२९ ई० में अंत कर दिया गया था रेखा कस्तवार जी लिखती है ।

''शासन के स्तर पर १८२९ में सती प्रथा की समाप्ति , १८५६ में पुनर्विवाह, १८६१ में अनुमति की आयु का अधिनियम पास हुआ।

रेखा कस्तवार जी के उक्त विचार जो दिए है उसके सन्दर्भ में मेरा मानना यह है कि पूर्व युगों में जो कुप्रथाओ का प्रंचलन था, वह इस युग में आते ही समाप्त हो गई हद तक अब महिला सुरक्षा संबंधी १०९ नम्बर लगाओं और सहायता पाओं इतना ही नहीं बालविवाह के कठोर नियम लागू हो गए कि कोई बालविवाह करने की हिम्मत ही नहीं कर सकता। स्त्री की दयनीय स्थिति को सुधारात्मक दृष्टि की ओर मोडने में समाज सुधारकों तथा स्त्री -पुरूष साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

वर्तमान सदी के आरम्भिक दशक में महिला लेखन ने अपना एक अलग समाजशास्त्र गढा हैं। ''उनके चिन्तन का फलक अत्यन्त विस्तृत और गहन है। परिवार समाज, स्त्री जाति के अधिकारों से लेकर वे संसार में शांति और सुरक्षा जैसे प्रश्नों के प्रति संजीदा हैं। उनके सामने न केवल देश वरन विश्व तक की स्त्रियों के आत्माभिमान, सम्मान, सुरक्षा अस्मिता स्थापन के सवाल गंभीर रूप से खड़े हैं। वास्तव में उनकी चिन्ता के केन्द्र में पूरा स्त्री समाज है और जहाँ कहीं है वह ज्यादतियों का शिकार है, शोषित है, उत्पीड़ित है। हिन्दी की तमाम महिला लेखिकाओं मसलन चित्रा मुद्गल प्रभाखेतान, मृदुला गर्ग, अलका सरावगी, ममता कालिया, मन्नुभण्डारी उषाप्रियंवदा, मृणाल पाण्डे, मेहरून्निसा परवेज, सूर्यबाला, आदि ने अपने चिन्तन एवं लेखन द्वारा स्त्री विमर्श की ऐसी सैद्धांतिकी विकसित की है जिसमें भारतीय समाज के आधी आबादी की चिन्ता अन्तविरोधों के साथ व्यक्त हुई है।

उपर्युक्त प्राचीनकाल, मध्यकाल एवं आधुतिक काल तक जो स्त्री संबंधी विवेचन किया गया है। उससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में वैदिक या उत्तर वैदिक एवं मध्यकाल में स्त्री पुरूष के अधीन गुलामी की जंजीरों में जकडी हुई पाते है, जबकि आधुनिक युग स्त्री आधुनिक युग स्त्री को अपनें विकास एवं प्रगति के लगभग पूर्णतः आजादी देता है। जिससे वह अपना शारीरिक, मानसिक , बौध्दिक एवं सांस्कृति विकास कर समाज में उच्चतम शिखर पर पहुँच सकती है।

निष्कर्षः-

अतः हम निष्कर्षःकह सकते है कि वैदिक या उत्तर वैदिक युग एवं मध्यकाल की अपेक्षा आधुनिक युग स्त्री के विकास का स्वर्णिम अवसर है किन्तु ग्रामीण एवं आदिवासी स्त्रियों के मानसिक बदलाव की आवश्यकता है इक्कीसवीं सदी में हिन्दी साहित्य का समाज अपनी नयी सैद्धान्तिकी गढा रहा हैं।वर्तमान सदी के पहले दो दशक में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की हलचलें बहुत तेज रही हैं जो बामपंथी एवं दक्षिण पंथी विचार धाराओं की टकराहट रूप से सामने आ रही हैं। तेजी से बदले इस परिदृश्य में हिन्दी के साहित्यकारों ने साहित्य का नया समाजशास्त्र रचने की कोशिश की हैं। साहित्य का नया समाजशास्त्र एक एक नये सौन्दर्य बोध से सम्पन्न है जहाँ स्त्री दलित, आदिवासी, पिछड़े, अल्संख्यक समाज की चिन्ता एवं उनके तमाम मुद्दे चिन्तन एवं रचना के केन्द्र में हैं। हिन्दी साहित्य की समाजशास्त्रीय प्रणाली विकसित करने में प्रो० मैनेजर पाण्डेय की पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' का महत्वपूर्ण योगदान है। लेखन ने यहां समाज और साहित्य के हर रिश्ते पर समाशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया है जो इक्कीसवीं सदी में साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा का मार्ग दर्शन कर रहा है।

संन्दर्भः-

१. गुलाबराय, साहित्य और समीक्षा, बाबू गुलाब राय ग्रन्थावली, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली २००५, पृ० ४२ एलन स्विगवुड, द सोसियालोजी ऑफ लिटरेचर, मैक गिब्बन - की लंदन, १९७२ पृ० ११
२. एलन स्विगवुड, द सोसियालोजी ऑफ लिटरेचर, मैक गिब्बन - की लंदन, १९७२ पृ० ११
३. सम्पादक नेमीचन्द्र जैन, मुक्तिबोध ग्रन्थावली भाग ५, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली, १९८०, पृ० ३८४
४. स्त्री चिन्तन की चुनौतियॉ/रेखा कस्तवार/दूसरा संस्करण-२०१६/राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दरियागंज नई दिल्ली / पृ० ७२
५. स्त्री चिन्तन की चुनौतियॉ / रेखाकस्तवार/दुसरा संस्करण-२०१६/राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दरियागंज नई दिल्ली/पृ०६५
६. हिन्दी साहित्य का इतिहास/डॉ. नगेन्द्र/तैतीसवॉ संस्कारण-२००७ ई./ मयूर पेपर प्रकाशन नोएडा/पृ. २८३।
७. हिन्दी साहित्य का इतिहास/डॉ. नगेन्द्र/तैतीसवॉ संस्कारण-२००७ ई./ मयूर पेपर प्रकाशन नोएडा/पृ. १३६।
८. दलित साहित्य के प्रतिमान/डॉ.एन.सिंह/आवृत्ति-२०१४/वाणी प्रकाशन दरियागंज नयी दिल्ली/पृ. ५४
९. मनुस्मृति भाषा-टीका /श्री गणेशदत्त पाठक/संस्करण २००२ ई /रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन कचौडीगली वाराणसी/ वृ५१
१०. मनुस्मृति भाषाटीका /श्रीगणेशदत्त पाठक/संस्करण ई./रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन कचौडीगली वाराणसी/वृ५१
११. हिन्दी शब्द अर्थ प्रयोग डॉ हरदेव बाहरी संशोधित एवं परिवर्ध्दित संस्करण - २०१४/ अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद /प. ३३
१२. मनुस्मृति भाषाटीका/श्रीगणेशदत्त पाठक/संस्करण -२००२ई/रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन कचौडी गली वाराणसी/पृ.१८६
१३. हंस(मासिक पत्रिका)संजय सहाय/जुलाई.२०१७/अक्षर प्रकाशन प्रा० लि० दरियागंज नई दिल्ली/पृ.७१

बृजलाल अहिरवार
शोधार्थी हिन्दी विभाग अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रींवा .

LBP PUBLICATION